Ll.b.
2semester
Legal history.

उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत वाद
Cases decided by the Supreme Court

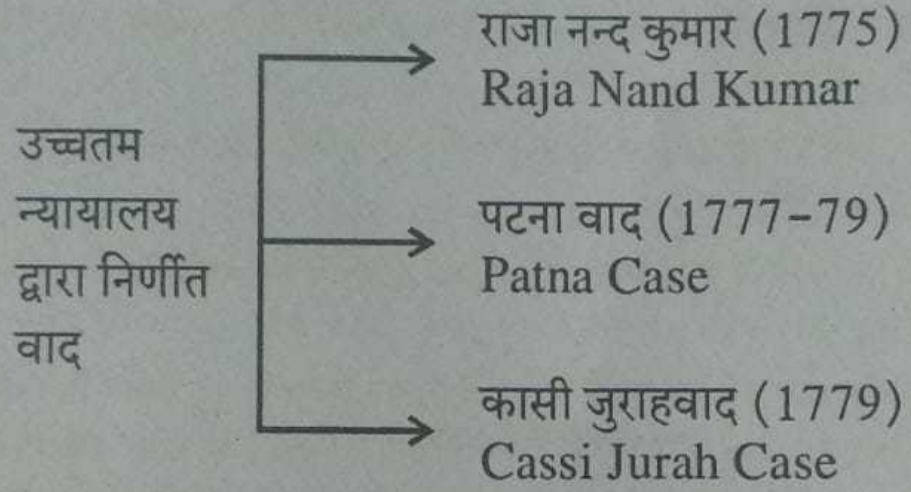

कलकत्ता उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्णीत महत्वपूर्ण वाद

Imporant Cases Decided by Calcutta Supreme Court

उच्चतम न्यायालय के तीन निर्णय विधिक इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण माने जाते हैं। इन निर्णयों में उच्चतम न्यायालय तथा सरकार के बीच की द्वन्द्वता परिलक्षित होती है।

डॉ. एम.पी. जैन[1] के अनुसार—इसके मुख्यतया तीन कारण थे—

(1) न्यायालय को भ्रष्टाचार के मामलों में राजस्व अधिकारियों को दण्डित करने की शक्तियाँ थी। वह बन्दी प्रत्यक्षीकरण रिट भी जारी कर सकता था।

(2) न्यायिक अधिकारियों द्वारा अपनी पदीय हैसियत में किये गये अवैध कार्यों के लिए न्यायालय को विचारण करने की अधिकारिता थी।

(3) उसे बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा में रहने वाले मूल निवासी प्रतिवादियों के विरुद्ध निषेधाज्ञा रिट जारी करने की अधिकारिता थी।

उच्चतम न्यायालय द्वारा कई महत्वपूर्ण निर्णय दिये गये, जिनमें से कई निर्णय विवादास्पद थे। जिससे उच्चतम परिषद् (Supreme Council) व भारतीयों में उच्चतम न्यायालय के प्रति असंतोष उत्पन्न हो गया। इसमें से 1775 का महाराजा नन्द कुमार का आपराधिक वाद का निर्णय भारतीय विधि के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस वाद का निर्णय विवादों से तथा संदेह से घिरा हुआ था। उच्चतम न्यायालय के स्थापना के तुरन्त बाद आने वाला यह प्रथम आपराधिक वाद था।

महाराजा नन्द कुमार के वाद का अभियोजन (Trial of Maharaja Nand Kumar's Case) 1775 ई.—इस वाद के अभियोजन व उच्चतम न्यायालय के निर्णय के पहले इस वाद से उत्पन्न होने की परिस्थितियों एवं इसकी पृष्ठभूमि को जान लेना भी आवश्यक है। इनके जाने बिना इस वाद के निर्णय का मूल्यांकन सही प्रकार से नहीं किया जा सकता। इस वाद के निर्णय से तत्कालीन प्रचलित अंग्रेजी विधि की कमियाँ व दोष भी सामने आये तथा भारतीय परिस्थितियों में इस विधि के इन दोषों व कमियों को आगे दूर करने का प्रयास किया गया जिससे भारतीय न्याय व विधि प्रशासन प्रगति की ओर अग्रसर हुआ। बिना संशोधित व परिवर्तन के लागू करना कितना अनुचित व अन्यायपूर्ण था।

महाराजा नन्द कुमार बंगाल के एक प्रभावशाली ब्राह्मण थे। उनके विरुद्ध कलकत्ता के उच्चतम न्यायालय में जालसाजी का आपराधिक मुकदमा चला गया, जिसमें अंग्रेजी विधि के अनुसार उन्हें फांसी का दण्ड दिया तथा अविलम्ब उन्हें फांसी दे दी गई।

---

1. Outlines of Indian Legal & Constitutional History.

आरोप से पूर्व की पृष्ठभूमि

(1) मोहम्मद रजा खां का अपदस्थ किया जाना—मोहम्मद रजा खां बंगाल का दीवान था जिसकी नियुक्ति महाराज्यपाल वारेन हेस्टिंग्स के द्वारा की गई थी। रजा खां को राजस्व वसूली कम होने की शिकायत पर कम्पनी के निर्देशक मण्डल (Board of Directors) द्वारा हटाये जाने की सिफारिश पर वारेन हेस्टिंग्स को अपदस्थ करना पड़ा तथा राजा नन्द कुमार के पुत्र गुरु दास को नाबालिक नवाब का संरक्षक नियुक्त किया गया। हेस्टिंग्स व रजा खां का मानना था कि यह शिकायत नन्द कुमार द्वारा करवाई गई थी। यह दोनों राजा नन्द कुमार के शत्रु बन गए। इस वाद में स्पष्ट रूप से इन दोनों का हाथ होना नजर नहीं आता। परन्तु उत्पन्न परिस्थितियों से यह निर्णय निकाला जा सकता है कि राजा नन्द कुमार को दण्ड जालसाजी के अपराध के लिए नहीं लेकिन हेस्टिंग्स के कारण मिला।

(2) बर्धवान की रानी का वारेन हेस्टिंग्स पर आरोप—बर्धवान की रानी ने वारेन हेस्टिंग्स पर आरोप लगाया कि हेस्टिंग्स ने 16,000 रुपये की रिश्वत लेकर उसके अवयस्क पुत्र को राजा की मृत्यु के पश्चात् दीवान मनोनीत किया था।

बर्धवान की रानी ने पत्र द्वारा उच्चतम परिष्द् में वारेन हेस्टिंग्स पर आरोप लगाया कि उसके अवयस्क पुत्र को राजा की मृत्यु के पश्चात् दीवान बनाये जाने के लिए वारेन हेस्टिंग्स ने 16,000 रुपये की रिश्वत ली थी।

पत्र पाते ही उच्चतम परिषद् ने वारेन हेस्टिंग्स के विरुद्ध कार्यवाही प्रारम्भ कर दी। हेस्टिंग्स ने आरोप से इन्कार करते हुए मीटिंग समाप्त कर दी और यहीं से हेस्टिंग्स व नन्द कुमार का टकराव शुरू हो गया। यह कहा जाता है कि बर्धवान की रानी ने हेस्टिंग्स पर यह आरोप नन्द कुमार के कहने पर लगाया था।

(3) मुन्नी बेगम की शिकायत—सन् 1775 ई. में मुर्शिदाबाद की परिषद् ने बंगाल के अवयस्क नवाब के द्वारा किये जाने वाले खर्चे के हिसाब से जांच में पाया गया कि बेहिसाब खर्चा किया गया है। इसका हिसाब मुन्नी बेगम जो अवयस्क नवाब की संरक्षिका थी से मांगा गया जिसमें 9,67,693 रुपये खर्च की गई रकम थी।

मुन्नी बेगम ने खर्चे का जो हिसाब दिया उसमें 1,50,000 रुपये वारेन हेस्टिंग्स को भेंटस्वरूप दिये गये दिखाये गये थे। इसे परिषद् ने प्रमाणित भी कर लिया।

(4) राजा नन्द कुमार का आरोप हेस्टिंग्स पर—नन्दकुमार ने वारेन हेस्टिंग्स पर उच्चतम परिषद् में आरोप लगाया कि उसके पुत्र गुरुदास को दीवान नियुक्त करवाने के लिए, राजा नन्द कुमार ने स्वयं 8 बैग सोने की मुद्राएँ हेस्टिंग्स को रिश्वत के रूप में प्रदान की थीं। इस आरोप से मुन्नी बेगम के आरोप की भी पुष्टि हो गई, उच्चतम परिषद् ने आरोप को सुनकर निर्णय दिया कि हेस्टिंग्स को दी हुई सोने की मुद्राऐं वापस नन्द कुमार को लौटा दे। हेस्टिंग्स ने कोई जवाब नहीं दिया।

कमालुद्दीन का नन्द कुमार पर आरोप—इसके कुछ दिनों बाद ही कमालुद्दीन नामक व्यक्ति ने उच्चतम परिषद् के सामने नन्द कुमार पर षड़यंत्र का आरोप लगाया।

उच्चतम परिषद् के सदस्यों ने इस आरोप को बहुमत द्वारा खारिज कर दिया। उच्चतम परिषद के सदस्यों का बहुमत नन्द कुमार के पक्ष में था।

महाराजा नन्द कुमार का परीक्षण (Trial of Maharaja Nand Kumar)—8 जून सन् 1775 को महाराजा नन्द कुमार के ऊपर आरोप लगाया कि उन्होंने जालसाजी की है।

यह आरोप बुलाकी दास नामक व्यक्ति के मैनेजर मोहन प्रसाद ने लगाया था। बुलाकी दास कलकत्ता निवासी था। मोहन प्रसाद का आरोप था कि नन्द कुमार ने 1771-72 में कुछ दस्तावेजों में जालसाजी करके बुलाकीदास के उत्तराधिकारियों को धोखा दिया।

वाद का परीक्षण लगातार आठ दिनों तक चला। बारह अंग्रेज व्यक्तियों की जूरी की सहायता से पूरा किया। जूरी ने जालसाजी का आरोप प्रमाणित पाया।

यहाँ पर उच्चतम परिषद् के सदस्यों ने नन्द कुमार को बचाने की पूरी कोशिश की लेकिन नाकामयाब रहे। उच्चतम न्यायालय ने ब्रिटिश संसद द्वारा सन् 1728 में पारित अधिनियम के अन्तर्गत नन्द कुमार को मृत्युदण्ड (फांसी) की सजा सुना दी। नन्द कुमार की प्रिवी कौन्सिल एवं ब्रिटेन के सम्राट् की क्षमादान हेतु प्रार्थना का अवसर दिए बिना छः सप्ताह बाद (5 अगस्त, 1775) को सजा कार्यान्वित कर दी गई।

उच्चतम न्यायालय के इस निर्णय को विधि के इतिहासकारों ने सदैव ही विवादास्पद माना है। इसे कई इतिहासकारों ने न्याय की हत्या माना है। कुछ इसे सही निर्णय मानते हैं और कुछ न्याय की हत्या नहीं तो न्याय का रस्खलन जरूर मानते हैं।

उच्चतम न्यायालय के निर्णय में विचारणीय प्रश्न—राजा नन्द कुमार का परीक्षण जिस प्रकार से लगातार चला जल्दी ही सजा भी कार्यान्वित कर दी गई। उच्चतम न्यायालय के सुरक्षित अधिकार इसकी अपील प्रिवी कौन्सिल में ब्रिटिश सम्राट् के समक्ष क्षमादान प्रार्थना नहीं भेजा जाना, न्यायालय की निष्पक्षता पर संदेह उत्पन्न कर देता है। नन्द कुमार को सजा ऐसे अधिनियम के तहत दी गई थी, जो ब्रिटेन में स्वयं एक काले अधिनियम के नाम से जाना जाता था और नहीं कलकत्ता की परिस्थितियाँ ऐसी थी जहाँ यह अधिनियम लागू किया जा सकता था। तब प्रचलित भारतीय विधि (हिन्दू व मुस्लिम विधि) में जालसाजी के लिए मृत्युदण्ड का दण्ड नहीं दिया जाता था।

विधि के इतिहासकारों की प्रतिक्रिया—जेम्स मिलार्ड में कार्ले, बेवरीज, कीथ आदि विधि शास्त्री व इतिहासकारों ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय को न्यायिक हत्या करार दिया है।

राजा नन्द कुमार को जालसाजी के आरोप में मृत्युदण्ड दिया गया था, जबकि वास्तविकता यह थी कि यह दण्ड उन्हें महाराज्यपाल हेस्टिंग्स के विरुद्ध आरोप लगाने व लगवाने के कारण प्राप्त हुआ था। यह कहा जाता है कि मुख्य न्यायाधीश ने यह दण्ड, अपने दोस्त हेस्टिंग्स के सम्मान को बचाने के लिए दिया था।

सर जेम्स स्टीफेन सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय को उचित मानते हैं। सर राबर्ट्स जैसे इतिहासकार इसे न्यायिक हत्या नहीं तो न्याय का रस्खलन अवश्य मानते हैं।

प्रतिक्रियाएँ : आलोचना

(1) उच्चतम न्यायालय का नन्द कुमार पर क्षेत्राधिकार—मिल, मेकाले, बेवरीज आदि इतिहासकारों का मानना है कि नन्द कुमार पर जालसाजी करने का आरोप सन् 1770 में लग गया था। उस समय नन्द कुमार कलकत्ता के निवासी नहीं थे, दूसरा उच्चतम न्यायालय में 1775 में आरोप लगाने वाला व्यक्ति व नन्द कुमार दोनों ही भारतीय थे इसीलिए न्यायालय का उन पर क्षेत्राधिकार ही नहीं था।

(2) भारतीय (हिन्दू–मुस्लिम) विधि—आलोचकों का मानना है कि प्रचलित भारतीय विधि में जालसाजी के लिए मृत्युदण्ड का प्रावधान नहीं था। गम्भीर अपराध की श्रेणी में नहीं आता था। उसके लिए एक भारतीय को इतना बड़ा दण्ड देना अनुचित व अन्यायपूर्ण था।

(3) सन् 1728 के अंग्रेजी अधिनियम को लागू करना–यह अधिनियम इंग्लैंड में लंदन की विशेष परिस्थितियों के कारण अधिनियमित किया गया था। इसमें जालसाजी के लिए मृत्युदण्ड का प्रावधान था। लंदन की परिस्थितियाँ तो कलकत्ता में मौजूद नहीं थीं और न ही औपचारिक रूप से इस अधिनियम को कभी भारत में लागू ही किया गया था।

(4) संदेह का लाभ प्रदान नहीं किया गया–नन्द कुमार पर आरोपित आरोप का कोई प्रत्यक्ष व दस्तावेजी साक्ष्य नहीं मौजूद था फिर भी उसे मृत्युदण्ड दे दिया गया। यहाँ उसे संदेह का लाभ दिया जाना चाहिए था।

(5) **परीक्षण विदेशी माहौल**—उच्चतम न्यायालय के सारे न्यायाधीश व जूरी के सदस्य एवं अभियोग पक्ष के बैरिस्टर अंग्रेज और उनका वकील अंग्रेजी नहीं समझते थे। उस समय बंगाली का अनुवाद भी अंग्रेजी में अच्छी तरह से नहीं किया जाता था।

(6) **अंग्रेजी विधि भारत में प्रवेश की तिथि का प्रश्न**—यह इस परीक्षण का महत्वपूर्ण प्रश्न था। भारत में अंग्रेजी विधि का प्रवेश आधुनिक मत के अनुसार अन्तिम व प्रथम बार 1726 के राजपत्र द्वारा हुआ था। इसीलिए सन् 1728 का अधिनियम भारत में लागू नहीं हो सकता था। परीक्षण के समय नन्द कुमार के वकील ने यह प्रश्न उठाया था; परन्तु यह ज्यादा समय तक ठहर नहीं पाया।

(7) **निर्णय की अपील प्रिवी कौन्सिल में दायर करने की अनुमति प्रदान नहीं करना**—राजा नन्द कुमार ने उच्चतम न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौन्सिल में अपील दायर करने की अनुमति के लिए प्रार्थना-पत्र न्यायालय में प्रस्तुत किया था। परन्तु विचार किए बिना ही उसे रद्द कर दिया गया जबकि इस वाद में अपील प्रिवी कौंउन्सिल को अवश्य की जानी चाहिए थी; क्योंकि यह एक आपराधिक वाद था, जिसमें मृत्युदण्ड दिया गया था।

(8) **इंग्लैंड के सम्राट् के समक्ष क्षमादान का प्रार्थना पत्र भेजने से इंकार**—न्यायालय ने राजा नन्द कुमार के क्षमादान के प्रार्थनापत्र को अस्वीकार कर दिया जबकि क्षमादान के लिए यह एक उपयुक्त वाद था। ये सब कारण न्यायाधीशों के निष्पक्ष व्यवहार में संदेह उत्पन्न करते हैं।

परीक्षण का समर्थन—जेम्स स्टीफेन्स परीक्षण की आलोचना को गलत मानते हुए उच्चतम न्यायालय को निर्दोष मानते हैं। उनके अनुसार परीक्षण निष्पक्ष एवं न्यायोचित था यह न्यायिक हत्या नहीं थी। वे इस धारणा को भी स्वीकार नहीं करते हैं कि नन्द कुमार को मृत्युदण्ड हेस्टिंग्स ईम्पे की साठगांठ (दोस्ती) के परिणामस्वरूप मिला था।

स्टीफेन का कहना है कि यह निर्णय सर्वसम्मति से चारों न्यायाधीशों एवं जूरी के बारह सदस्यों द्वारा लिया गया था, अकेले ईम्पे द्वारा नहीं इसीलिए षड़यंत्र या साठगांठ का संदेह निराधार है।

प्रतिक्रियाएँ परीक्षण के समर्थन में—स्टीफेन के मतानुसार नन्दकुमार पर आरोपित अपराध कलकत्ता में पारित हुआ था। सन् 1773 के अधिनियम एवं 1774 के राजपत्र के प्रावधानों के अन्तर्गत अपराध कलकत्ता में किया गया है, तो अपराधी चाहे कहीं का भी निवासी हो। न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आता था। नन्द कुमार भी इन्हीं प्रावधानों के अन्तर्गत न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आते थे।

तत्कालीन प्रचलित अवधारणा यही थी कि 1728 का अधिनियम भारत में लागू था और उसी सद्भावना के तहत इस अधिनियम को उच्चतम न्यायालय द्वारा लागू किया गया था। इसी अधिनियम के अन्तर्गत राधा चरण मित्तर नामक व्यक्ति को जालसाजी के लिए फांसी की सजा सुनाई गई थी।

नन्द कुमार के निर्णय के विरुद्ध प्रिवी कौंसिल को अपील एवं सम्राट् को क्षमादान का प्रार्थना पत्र हेतु अस्वीकार करना न्यायालय के स्वविवेक पर आधारित था। यह अधिकार उसे सन् 1774 के प्रावधानों के अन्तर्गत प्राप्त था इसीलिए ऐसा करके उसने कोई गलत कार्य नहीं किया था।

कठोर परिश्रम की आलोचना से भी स्टीफेन सहमत नहीं है उनका मानना है कि गवाह पक्ष का वकील कमजोर था, इसीलिए न्यायाधीशों ने स्वत: ही गवाहों से जिरह की।

न्यायिक रस्खलन (Miscariage of Justice)—सर राबर्ट्स के मतानुसार यदि यह मान भी लिया जाये कि राजा नन्द कुमार की न्यायिक हत्या नहीं की गई थी तो यह भी माना जा सकता है कि उनको उचित न्याय मिल पाया था। कहीं न कहीं संदेह जरूर उत्पन्न होता है और इसीलिए यह कहना उचित होगा कि इस वाद में न्याय का रस्खलन जरूर हुआ था।

इसके कारण है कि—

(1) राजा नन्द कुमार को अत्यन्त कठोर दण्ड मिला था। मृत्युदण्ड की जगह उन्हें कारावास का दण्ड भी दिया जा सकता था।

(2) इंग्लैण्ड में काले कानून के नाम से जाना जाने वाला दण्ड कलकत्ता में लागू करना गलत था। कलकत्ता की परिस्थितियाँ लंदन की परिस्थितियों से भिन्न थी। लंदन में औद्योगिकीकरण के कारण यह अधिनियम पारित किया गया था।

(3) सबसे महत्वपूर्ण संदेह उत्पन्न करने का कारण है कि मृत्युदण्ड पारित करने के बाद भी न्यायालय इसका स्थगन करके, प्रिवी कौन्सिल को अपील या इंग्लैण्ड की अधिराट् के समक्ष क्षमादान की याचिका भेजे जाने का अधिकार प्रदान कर सकती थी। लेकिन न्यायालय ने ऐसा कुछ नहीं किया, जबकि न्यायालय के समक्ष यह सबसे उचित वाद था जिसमें वह इन अधिकारों के प्रयोग की अनुमति प्रदान करता।

कीथ महोदय का भी मत है कि सन् 1728 ई. के अधिनियम के प्रावधानों का इस वाद में निर्दयतापूर्वक लागू किया गया जो न्यायिक रस्खलन ही था।

न्यायाधीशगण यदि चाहते तो इस वाद में दया दिखा सकते थे। एक भारतीय को इस प्रकार का दण्ड प्रदान करना न्यायालय का कठोरतम निर्णय था। इस वाद के निर्णय से भारतवासी अंग्रेजी विधि, प्रक्रिया तथा न्यायालय से भयभीत हो उठे। भारत के वैधानिक इतिहास की यह एक दर्दनाक घटना थी।

(ii) पटना वाद (सन् 1777–79)—इस वाद का भारतीय विधि के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके परिणामस्वरूप मौफ्फसिल अदालतों के दोष उजागर हो गये। कम्पनी द्वारा स्थापित उच्चतम न्यायालय से निम्न न्यायालय की अनियमितताएँ व सभी प्रकार के दोषों को कलकत्ता उच्चतम न्यायालय ने प्रकट कर दिया। इस वाद के परिणामस्वरूप उच्चतम परिषद् एवं उच्चतम न्यायालय के बीच संघर्ष शुरू हो गया। इसमें उच्चतम न्यायालय की अधिकारिता (Jurisdiction of Supreme Court), उसकी कार्यप्रणाली, न्यायाधीशों की कार्यशैली से सम्बन्धित प्रश्न विचारणीय थे।

इस वाद के निर्णय एवं अपनाई गई नीति के परिणामस्वरूप भारतीयों का विश्वास भी उच्चतम न्यायालय पर से डगमगाने लग गया।

तथ्य—शाहजाह बेग खां काबुल निवासी बंगाल आया। उसने कम्पनी की नौकरी करके काफी धन-सम्पदा अर्जित की। सेवा निवृत्त होने पर अपनी पत्नी नादिरा बेगम के साथ पटना में ही रहने लगा। उनकी अपनी कोई संतान नहीं थी इसीलिए शाहजाह बेग ने अपने भाई के बेटे बहादुर बेग को काबुल से बुलाकर अपने पास रख लिया। बहादुर बेग का निकाह नादिरा बेगम की बहन से करवा दिया गया। शाहजहाँ बेग उसे अपने बेटे के समान ही प्यार करता था। शाहजाह बेग ने बहादुर बेग को अपना उत्तराधिकारी बनाने की इच्छा प्रकट की थी लेकिन इस कार्य की कोई दस्तावेजी कार्यवाही करने से पूर्व ही बेग की मृत्यु हो गई, उसकी मृत्यु के पश्चात् बहादुर बेग एवं नादिरा बेगम में सम्पत्ति का उत्तराधिकार को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया। दोनों ही मृतक की सम्पूर्ण सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होने का दावा करने लगे।

पटना प्रान्तीय परिषद्—बहादुर बेग ने स्वयं को मृतक शाहजाह बेग का दत्तक पुत्र (Adopted Son) घोषित करते हुए नादिरा बेगम के विरुद्ध पटना प्रान्तीय परिषद् में वाद दायर कर दिया। उसका दावा था कि वहीं शाहजहाँ बेग की सम्पूर्ण सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है। साथ ही नादिरा बेगम ने दावों का विरोध किया उसका कहना था, कि उसके मृतक पति के द्वारा लिखित मेहरनामा, इकरारनामा व हिबनामा के अनुसार वही सम्पूर्ण सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी है।

परिषद् ने मुस्लिम विधिक अधिकारियों को वाद में आगे कार्यवाही करने का आदेश देते हुए निर्देश दिया कि–

(1) मृतक की सम्पूर्ण सम्पत्ति की एक सूची बनाये।

(2) तत्पश्चात् विवादित सम्पत्ति को अपने अधिकार में लेकर सील कर दे।

(3) मुस्लिम विधि के अनुसार सम्पत्ति का बंटवारा किस प्रकार से किया जावे यह निर्धारित करे। परिषद् को अवगत कराये, परिणामस्वरूप विधिक अधिकारियों ने सम्पति को अपने कब्जे में ले लिया। उस समय नादिरा बेगम ने इसका काफी विरोध किया, विधिक अधिकारियों ने उसको काफी बेइज्जत किया। मकान के एक कमरे के अलावा सारे कमरे जब्त कर सील कर दिये गये। इससे नाराज होकर नादिरा बेगम ने एक दरगाह में शरण ली।

विधिक अधिकारियों ने उसी स्थान पर गवाही आदि सुनकर अपनी रिपोर्ट प्रान्तीय परिषद् को सौंप दी। नादिरा बेगम का बयान व उसके द्वारा प्रस्तुत दस्तावेज असत्य माने गये। विधि के अधिकारियों ने बहादुर बेग को शाहजाह बेग का दत्तक पुत्र होना भी अस्वीकार कर दिया। मुस्लिम विधि दत्तक पुत्र के प्रावधान को नहीं मानता। सम्पूर्ण सम्पत्ति को मुस्लिम विधि के अनुसार सम्पत्ति को चारों भागों में बांट दिया। तीन भाग मृतक के भाई को तथा एक चौथाई भाग नादिरा बेगम को दिया गया। भाई काबुल में था इसीलिए उसका भाग उसके पुत्र बहादुर बेग को दे दिया गया। नादिरा बेगम ने अपना भाग लेने से इन्कार कर दिया।

विधिक अधिकारियों को मुस्लिम विधि का ज्ञान था उन्होंने उत्तराधिकार विधि के प्रावधानों के अनुसार उचित रिपोर्ट दी थी। लेकिन उनको साक्ष्य एवं तथ्यों का मूल्यांकन करने का अधिकार नहीं था यह अधिकार परिषद् का था।

नादिरा बेगम द्वारा सदर दीवानी में अपील—नादिरा बेगम ने प्रान्तीय परिषद् के निर्णय के विरुद्ध सदर दीवानी अदालत में अपील दायर की। सदर दीवानी अदालत ने इस पर कोई गौर नहीं दिया।

उच्चतम न्यायालय में अपील—नादिरा बेगम ने कलकत्ता के उच्चतम न्यायालय में बहादुर बेग, काजी तथा दोनों मुस्लिमों पर वाद प्रस्तुत किया। उसने आरोप लगाया कि इन व्यक्तियों ने उसके साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया तथा उसे बिना विधिक औचित्य के छः मास तक कैद में रखा। नादिरा बेगम ने छः लाख रुपये क्षतिपूर्ति की मांग की।

उच्चतम न्यायालय ने केपियस की रिट जारी की। परिणामस्वरूप, बहादुर बेग व मुस्लिम विधिक अधिकारियों को गिरफ्तार करके कलकत्ता लाया गया। चार लाख रुपये की जमानत अदा न करने से उन्हें वाद की सुनवाई तक कारावास में रखने का आदेश दे दिया। वाद में सरकार ने विधिक अधिकारियों की जमानत पर छुड़वा लिया।

उच्चतम न्यायालय का निर्णय—उच्चतम न्यायालय ने नादिरा बेगम के पक्ष में निर्णय देते हुए काजी मुफ्ती मौलवी तथा बहादुर बेग के विरुद्ध 3,00,000 रुपये की क्षतिपूर्ति का आदेश दिया।

क्षतिपूर्ति अदा नहीं करने पर उन्हें कारावास भेज दिया गया जहाँ उन्हें 1781 में बन्दोबस्त अधिनियम पारित होने तक रहना पड़ा।

उच्चतम न्यायालय ने नादिरा बेगम के दस्तावेजों को सही मानते हुए उसे शाहजहाँ बेग की सम्पूर्ण सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मान लिया।

पटना वाद के विवादित प्रश्न–

(1) क्या उच्चतम न्यायालय को बहादुर बेग पर अधिकार क्षेत्र था।

यह तर्क न्यायालय में दिया गया कि बहादुर बेग राजस्व वसूली करने वाला काश्तकार था इसीलिए यह न तो कम्पनी का कर्मचारी है और न ही कलकत्ता का निवासी है इसीलिए न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र में

नहीं आता। न्यायालय ने तर्क अस्वीकार करते हुए निर्णय दिया कि बहादुर बेग गाँवों का राजस्व वसूल करने वाला कर्मचारी होने के कारण से न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र में आता था। यह निर्णय सही प्रतीत नहीं होता है। राजस्व वसूल करने वाला किसान व राजस्व वसूल करने वाले अधिकारियों के बीच फर्क था।

राजस्व वसूल करने वाला एक निर्धारित राशि सरकार को राजस्व के रूप में देकर उन लोगों से राजस्व वसूल करने का अधिकार ले लेता था जिन्हें उसने भूमि पट्टे पर दे रखी होती थी।

किसान चाहे ज्यादा राजस्व वसूल करे या कम उसे निर्धारित राशि ही सरकार को देनी पड़ती थी, जबकि राजस्व वसूल करने वाला अधिकारी कम्पनी का वेतनधारी कर्मचारी होता था इसीलिए यदि वह निर्धारित राशि से अधिक वसूल करता था तो उसका हिसाब सरकार को देना पड़ता था। राजस्व वसूल करने वाले किसान को कम्पनी का कर्मचारी मानना तर्क- संगत नहीं था।

(2) क्या विधि अधिकारियों पर न्यायालय का अधिकार क्षेत्र था?

विधि अधिकारियों की तरफ से तर्क दिया गया कि वे कम्पनी के कर्मचारी नहीं हैं। परन्तु उच्चतम न्यायालय का मत था कि वे कम्पनी की अदालतों में विधि अधिकारी के रूप में नियुक्त हैं इसीलिए न्यायालय का अधिकार क्षेत्र उन पर था। यह तर्क सही प्रतीत होता है।

(3) क्या विधि अधिकारियों को अपने कर्त्तव्य निर्वाह में किए गए कार्यों के निष्पादन के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकता था?

काजी, मुफ्ती मौलवी के द्वारा तर्क दिया गया कि जिस कार्य के निष्पादन के लिए उत्तरदायी ठहराया जा रहा है वे उन्हें प्रांतीय परिषद् द्वारा सौंपे गये थे इसीलिए वे व्यक्तिगत रूप से इसके लिए उत्तरदायी नहीं थे। उच्चतम न्यायालय ने इसे अस्वीकार कर दिया और निर्णय दिया कि इन्होंने परिषद् के कार्यों का अतिक्रमण किया था। उन्होंने उन अधिकारों का उपयोग किया, जो प्रान्तीय परिषद् में निहित थे।

विधि अधिकारियों का कार्य परिषद् को वाद के संदर्भ में स्थानीय विधि की व्याख्या करना तथा उसका ज्ञान कराना मात्र था।

न्याय प्रशासन करने तथा वाद की सुनवाई और तथ्यों की जाँच कर निर्णय करने का अधिकार सिर्फ प्रान्तीय परिषद् को था परिषद् अपने इन कार्यों के निष्पादन को प्रत्यायोजित नहीं कर सकता था। अंग्रेजी विधि के अन्तर्गत एक बार हस्तान्तरित किया गया अधिकार पुनः किसी को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता डेलेगेट नाम पोटेस्ट डेलेगेर यह अंग्रेजी विधि का एक मान्य सिद्धान्त है।

न्यायालय ने निर्णीत किया कि इस वाद में विधि अधिकारियों की कार्यवाही अवैधानिक थी इसीलिए उन पर वाद चलाया जा सकता था।

पटना वाद ने कम्पनी की तत्कालीन न्याय व्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को प्रकट किया—

(1) इस वाद से यह स्पष्ट हो गया कि मुस्लिम विधि अधिकारियों को जिस प्रकार से सम्पत्ति का विभाजन मुस्लिम विधि से किया था, वह सही था।

(2) प्रान्तीय परिषदें न्यायिक कार्यों में रुचि नहीं रखती थीं। उन्होंने अपने कार्यों का निष्पादन का भार विधि अधिकारियों को प्रत्यायोजित कर रखा था। पग्षिदों का मुख्य उद्देश्य राजस्व वसूली था।

(3) इस वाद से यह भी स्पष्ट हो गया कि कलकत्ता स्थित सदर दीवानी अदालतों का न्यायिक प्रशासन का कार्य अनियमित व निष्क्रिय था। प्रान्तीय परिषद् के निर्णयों के विरुद्ध अपील सदर दीवानी अदालत पर कोई कार्यवाही नहीं किए जाने से इसके अस्तित्व पर ही प्रश्न-चिन्ह लग गया।

इस वाद से यह स्पष्ट हो गया कि कम्पनी की न्याय व्यवस्था काफी कमजोर व त्रुटिपूर्ण थी जिसे बाद में इस वाद के कारण भारतीय जमींदारों में भय व आतंक व्याप्त हो गया उन्होंने राजस्व वसूली का काम बंद कर

दिया। उच्चतम परिषद् भी उच्चतम न्यायालय से नाराज हो गई उसका मानना था कि इस वाद के द्वारा कम्पनी को न्याय प्रशासन में न्यायालय द्वारा अनुचित हस्तक्षेप किया गया था। विधि अधिकारियों की गिरफ्तारी एवं उनके साथ किए गये दुर्व्यवहार से भी भारतीयों में भय पैदा हो गया, कि पता नहीं कब किस के ऊपर न्यायालय अपना अरेस्ट इन मिन प्रोसेस का हथियार प्रयोग करके उन्हें कारावास में बन्द कर दे। चाहे वह व्यक्ति उसके अधिकार-क्षेत्र में आता हो या नहीं।

(iii) कासी जुहारवाद (1779)—इस वाद के परिणामस्वरूप उच्चतम न्यायालय एवं उच्चतम परिषद् के सम्बन्धों का तनाव अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

इस वाद का मुख्य मुद्दा उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार एवं उसके द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया से था।

तथ्य—कलकत्ता निवासी काशीनाथ बाबू ने एक बड़ी रकम कासी जुराह के जमींदार जो सरकारी रेवेन्यू वसूल करने का कार्य भी करता था को ऋण के रूप में दी।

लम्बी अवधि तक जमींदार ने बार-बार मांगने पर भी ऋण का भुगतान नहीं किया। काशीनाथ बाबू ने कलकत्ता के रेवेन्यू बोर्ड के माध्यम से जमींदार से ऋण अदायगी का असफल प्रयास किया।

इन असफल प्रयासों के पश्चात् काशीनाथ ने कलकत्ता के उच्चतम न्यायालय में जमींदार के विरुद्ध ऋण भुगतान के लिए वाद दायर कर दिया।

क्षेत्राधिकार के दो आधारों पर यह वाद उच्चतम न्यायालय में लाया गया। कासी जुराह का जमींदार कम्पनी की ओर से राजस्व वसूल करता है। इसीलिए यह कम्पनी का कर्मचारी है।

ऋण-पत्र कलकत्ता में निष्पादित किया गया था तथा ऋण राशि भी कलकत्ता में जमींदार को दी गई थी।

उच्चतम न्यायालय ने अपनी प्रक्रिया के अन्तर्गत कासी जुराह के जमींदार के विरुद्ध केपियस की रिट जारी कर दी तथा जमानत की राशि तीन लाख रुपये रख दी। इस कार्यवाही की जानकारी मिलते ही जमींदार गिरफ्तार होने से बचने के लिए कहीं जाकर छिप गया। जमानत अदा करने पर वाद की कार्यवाही तक उसे कैद में जाना था। उच्चतम न्यायालय का आदेश कार्यान्वित नहीं हो सका।

उच्चतम परिषद् को मिदनापुर कलेक्टर ने पत्र के द्वारा अवगत कराया कि कासी जुराह का जमींदार उच्चतम न्यायालय की कार्यवाही के डर से गायब हो गया है। इससे कासी जुराह में राजस्व वसूली नहीं हो पा रही है। उच्चतम परिषद् ने अवलिम्ब सरकारी महाअधिवक्ता से परामर्श लेकर विज्ञप्ति जारी की। सन् 1773 ई. के रेग्यूलेटिंग अधिनियम के प्रावधानों के अन्तर्गत कोई भी जमींदार उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार में नहीं आते हैं। इसी आशय का एक पत्र अलग से कासी जुराह के जमींदार को भेजा गया कि वह उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार में नहीं है। इसीलिए अपने कार्य पर लौट आये। उच्चतम न्यायालय ने इसी बीच दूसरी रिट जारी करके जमींदार की सम्पत्ति को जब्त करने का आदेश देते हुए न्यायालय के शेरीफ को कुछ सिपाही की टुकडी के साथ आदेश की पालना हेतु भेज दिया।

जब उच्चतम परिषद् (सरकार) को इस आदेश की जानकारी प्राप्त हुई तो उसने न्यायालय के आदेश को कार्यान्वित करने गये हुए कर्मचारियों को गिरफ्तार कर कलकत्ता लाने के लिए सेना भेज दी। उन्हें गिरफ्तार कर कलकत्ता लाया गया, कुछ समय बाद उन्हें छोड़ दिया गया। काशीनाथ ने इस प्रकरण के बाद उच्चतम न्यायालय में सपरिषद् महाराज्यपाल पर सामूहिक व अलग-अलग आरोप लगाया कि उन्होंने अत्याचार किया है। न्यायालय ने सबको न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का आदेश पारित कर दिया। पहले तो इन्होंने सोचा कि न्यायालय के आदेश का आदर करते हुए उन्हें उपस्थित हो जाना चाहिए। महाधिवक्ता से परामर्श करने पर

इन्होंने अपना इरादा बदल दिया, उसने परामर्श दिया कि उपर्युक्त कार्यवाही इन के द्वारा सरकारी हैसियत से की है इसीलिए ये सभी व्यक्तिगत रूप से कार्यवाही के लिए उत्तरदायी नहीं हैं।

न्यायालय ने सपरिषद् महाराज्यपाल के विरुद्ध कार्यवाही आगे नहीं बढाई। मुख्य न्यायाधीश ने टिप्पणी की कि सपरिषद् महाराज्यपाल के सदस्यों को न्यायालय के क्षेत्राधिकार से अपराधिक वादों में ही उन्मुक्ति मिली हुई है दीवानी वादों में नहीं।

न्यायालय ने अपना सारा रोष सरकारी महाधिवक्ता पर निकाल लिया उसे परिषद् महाराज्यपाल को गलत राय देने पर गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया। जहाँ बाद में उसकी मृत्यु हो गई।

न्यायालय का कहना था कि किसी व्यक्ति पर उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार है या नहीं यह निश्चित करने का अधिकार सिर्फ न्यायालय को था अन्य किसी को नहीं जिस व्यक्ति पर क्षेत्राधिकार का दावा किया गया हो। 12 मार्च, 1780 को काशीनाथ बाबू ने उच्चतम न्यायालय में कासी जुराह के जमींदार तथा सपरिषद् महाराज्यपाल के विरुद्ध दायर किया, वाद वापस ले लिया।

इस वाद का अन्त महत्वपूर्ण नहीं था। महत्वपूर्ण थे वे प्रश्न, जो इस वाद के कारण उत्पन्न हुए–

क्या वे सारे व्यक्ति जो वाद के प्रतिवादी थे, उच्चतम न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आते थे। न्यायालय का दावा था कि कोई भी व्यक्ति न्यायालय के क्षेत्राधिकार में आता है या नहीं इसका निर्णय करने का अधिकार सिर्फ न्यायालय को ही है, अन्य किसी को नहीं। जिस व्यक्ति पर क्षेत्राधिकार की अधिकारिता बताई गई हो न्यायालय द्वारा सर्वप्रथम उसे न्यायालय के समक्ष उपस्थित होकर अपना पक्ष रखना चाहिए। यदि न्यायालय का क्षेत्राधिकार उस पर नहीं होगा तो उसे वाद की आगे की कार्यवाही से मुक्त कर दिया जायेगा।

यदि उच्चतम परिषद् ने थोडी जल्दबाजी नहीं की होती और जमींदार को न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने से मना नहीं किया होता तो। न्यायालय का कहना था कि यदि व्यक्ति उसके क्षेत्राधिकार के निर्णय से सहमत नहीं है, तो प्रिवी कौन्सिल में अपील कर सकता था। किसी भी वाद के प्रारम्भ होने से पहले क्षेत्राधिकार का निर्णय करना आवश्यक था यह निर्णय सिर्फ न्यायालय द्वारा ही किया जा सकता था।

न्यायालय में वाद कार्यवाही प्रारम्भ होते ही उसके द्वारा प्रारम्भिक प्रक्रिया न्यायालय द्वारा केपियस रिट या अरेस्ट इन मीन प्रोसेस प्रतिवादी के विरुद्ध प्रारम्भ की जाती थी–गिरफ्तारी से बचने के लिए जमानत की राशि भी 3 लाख रुपये रखी गई थी, जिसे भारतीयों द्वारा अदा करना बड़े मुश्किल का काम था। परिणामस्वरूप उन्हें क्षेत्राधिकार के प्रश्न के निर्णय होने तक कारावास में रखा जाता था। यह प्रक्रिया अंग्रेजी न्यायिक प्रक्रिया से ली गई थी, जो भारतवासियों के लिए एक नई व अनजानी प्रक्रिया थी। यदि न्यायालय चाहता तो वह इसे अपनी प्रक्रिया के लिए नियम बनाने के अधिकार के तहत भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप बना सकता था।

कासी जुराहवाद के परिणाम—

(i) उच्चतम न्यायालय का क्षेत्राधिकार (Jurisdiction) कम हो गया; परिणामस्वरूप न्यायालय का क्षेत्राधिकार कलकत्ता प्रेसीडेन्सी नगर तक ही सीमित रह गया।

(ii) मौफ्फसिल क्षेत्र के न्यायिक एवं मालगुजारी के कार्यों का पृथक्कीकरण कर दिया गया।

(iii) बन्दोबस्त अधिनियम, 1781 पारित किया गया।

❑❑❑